Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222 ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

शोध-समीक्षा अंक

● वर्ष-16 ● अंक 37 ● अक्टूबर - दिसंबर 2023 ● पूर्णांक 75 ● मूल्य 100 रुपए 37

● संपादक - डॉ. सतीश पांडेय

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN/2008/26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)
पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
संस्थापक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
संपादकीय सहयोग :
डॉ. भगवती प्रसाद उपाध्याय
डॉ. अनंत द्विवेदी
डॉ. ज्योत्सना राम
श्री. संतोष कुमार यादव

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा,
घाटकोपर (प.),
मुंबई-400 084.
Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :
'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)
1) डॉ. राम प्रसाद भट्ट
भारत-विद्या विभाग,
हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, हैम्बर्ग, जर्मनी
2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विवि.,
वाराणसी, (उ. प्र.)
4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी,
दिल्ली110068
5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय,
मुंबई
6) प्रो. (डॉ.) अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई
विश्वविद्यालय, मुंबई
7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सवित्रीबाई फुले पुणे
विद्यापीठ, पुणे
8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक
विश्वविद्यालय, धारवाड़
9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : डॉ. सतीश पांडेय ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

● वर्ष-16 ● अंक 37 ● अक्टूबर-दिसंबर-2023 ● पूर्णांक 74 ● मूल्य 100 रुपए
सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : **समीचीन** / sameecheen
A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,
Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

अनुक्रमणिका

1. अपने तईं 07
2. महानगरीय जीवन का यथार्थ और 'जंगल के जुगनू'
   - प्रो. डॉ. अनिल सिंह 08-11
3. 'विसर्जन' : मुक्त बाजार और उदारीकरण का नया विमर्श
   - डा. मृत्युंजय सिंह 12-17
4. 'कारे जहाँ दराज है' में अस्मितामूलक विमर्श'
   - डॉ. मिर्झा अनिसबेग रज्जाकबेग 18-22
5. अमर देसवाः महामारी एवं अन्य समस्याओं का यथार्थ चित्रण
   - डॉ. राजेश कुमारी कौशिक 23-28
6. स्त्रीगाथाः बेनाम स्त्री की मनोदशा का चित्रण
   -डॉ बसुन्धरा उपाध्याय 29-34
7. 'तमस' में पंजाब का लोकजीवन - किरन रानी 35-39
8. मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में संघर्षशील नारी की व्यथा
   - डॉ. सविता टॉक (शोध-निर्देशक) सुश्री दुर्गावती (शोधार्थी) 40-45
9. 'पत्ताखोर' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में युवापीढ़ी में नशाखोरी
   की समस्या- डॉ. रीना सिंह 46-49
10. हिमांशु जोशी के उपन्यासों में प्रेम सम्बन्धों के
    विविध रूप- डॉ. गजेन्द्र सिंह 50-53
11. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी पात्रों का मातृत्व
    के प्रति द्वन्द्व का चित्रण- डॉ. झेलम झेंडे 54-62
12. हिंदी के 'डूब' और नेपाली के 'यहाँदेखि त्यहाँसम्म'
    उपन्यास में स्त्री चेतना का स्वरूप- टिंकू छेत्री 63-68
13. महाश्वेता देवी के उपन्यास 'सूरज गगराइ' में आदिवासी
    चेतना- गुरप्रीत कौर (शोधार्थी) 69-73
14. सुशीला टाकभौरे कृत 'वह लड़की' उपन्यास में दलित महिला
    चेतना- डॉ. एल. तिल्लै सेल्वी (शोध-निर्देशक)
    एस. जानकी (शोधार्थी) 74-79
15. 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' उपन्यास में
    शरणार्थियों की समस्याएँ' - प्रोफेसर आर.पी. गंगवार (शोध-निर्देशक)
    पूनम लाकर (शोधार्थी) 80-83
16. लिहाफ से ओढी सदाचार- डॉ .प्रणीता.पी 84-88
17. संजीव की कहानियों में आदिवासी चिंतन
    - डॉ. मीनाक्षी चौधरी 89-94
18. हिंदी कहानियों में पल्लवित दिव्यांग विमर्श : आत्मनिर्भरता
    एवं जिजीविषापूर्ण कहानियों का निरीक्षण- वैशाली सिंघल 95-99
19. गाँवों के बदलाव की कहानी-'अग्निलीक'
    - डॉ. गोविंद शिवशेट्टे 100-103
20. संबंधों पर पड़ता तनाव का सच- डॉ सिन्धु जी नायर 104-108

21. विकास बिश्नोई की कहानियों में बदलते वर्तमान
परिदृश्य- डॉ. रश्मि शर्मा 109-112
22. प्रेमचन्द के आलोचकों का सांस्कृतिक अधिष्ठान
- मिन्नु जोसेफ 113-117
23. भारतीयता के उपासक : प्रेमचंद- राघवेन्द्र सिंह 118-123
24. बेरोजगार युवा मानस की व्यथा-कथा और अखिलेश का कथा-
साहित्य- प्रो. नवीन चन्द्र लोहनी,(शोध-निर्देशक), डॉ.योगेन्द्र सिंह 124-128
25. 'धर्म और अधर्म' नाटक - पौराणिक परिप्रेक्ष्य में- डॉ. शर्लिन 129-132
26. दलित विमर्श के आइने में हिन्दी नाटक और रंगमंच
- विभीषण कुमार 133-138
27. 'मुआवजे' नाटक में चित्रित सामाजिक यथार्थ'
- मनोजकुमार सुभाष शर्मा 139-144
28. भक्ति की पृष्ठभूमि पर स्त्री की आत्माभिव्यक्ति
- डॉ. उमा मीणा 145-151
29. मीराबाई की भक्ति भावना का स्वरूप - छविन्दर कुमार 152-156
30. भारतेन्दु युगीन कवि : दत्त द्विजेन्द्र के काव्य में राष्ट्रीय चेतना
- डॉ मिथिलेश शर्मा 157-163
31. समय से साक्षात्कार की कविताएँ - प्रोमिला 164-171
32. संत रविदास : आस्था और विश्वास के कवि - प्रो. चंद्रकांत सिंह 172-177
33. प्रकृति, पारिस्थितिकी और समकालीन हिंदी कविता- ध्रुव कुमार 178-183
34. मराठी संतों का हिंदी काव्य- डॉ रूपा चारी 184-190
35. विचलन प्रतिमान के निकष पर ज्ञानेंद्रपति की कविताएँ
- प्रो. सदानंद भोसले, (शोध-निर्देशक)
रेवनसिद्ध काशिनाथ चव्हाण, (शोध - छात्र) 191-196
36. मनुष्यता का अकाल और जसिंता की कविता - अपर्णा ए. 197-201
37. विराट व्यक्तित्व के साहित्यकार : देवेश ठाकुर
- डॉ प्रवीण चंद्र बिष्ट 202-211
38. रामदरश मिश्र :व्यक्तित्व एवं रचना-संसार- सौरभ मिश्र 212-216
39. अट्टालिका से देखिए झोपड़ी का दैन्य- अभिषेक गुप्ता 217-221
40. संस्मरण में पशु-जीवन : मनुष्यता की पहचान
- डॉ. मधुबाला शुक्ल 222-226
41. साहित्य का स्त्रीवादी चेहरा - डॉ. सुनीता कुमारी 227-233
42. महिला सबलीकरण की दिशा में महात्मा गांधी चिंतन
- प्रा. रेणुका चव्हाण 234-239
43. भूमंडलीकरण के खिलाफ एक प्रतिरोध के रूप में आदिवासी
संस्कृति- डॉ. अनीश के. एन. 240-243
44. कच्छ के छोटे रण में अगरिया समुदाय की सामाजिक आर्थिक
स्थिति का अध्ययन- डॉ. हसमुख पंचाल 244-248
45. सहयोग और सहकारी संघवाद - डॉ सुमन यादव 249-253

प्रकृति, पारिस्थितिकी और समकालीन हिंदी कविता

- ध्रुव कुमार

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में समकालीन कविता विषय की नवीनता की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है. इस काल की हिंदी कविता में आम आदमी की अंतरानुभूतियों का चित्रण, स्वाधीनता संबंधी नई अभिव्यक्ति, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठे आंदोलनों का प्रभाव, स्त्री, दलित तथा आदिवासी समुदाय के प्रति नए दृष्टिकोण का चित्रण हुआ है. इन्हीं विषयों में पारिस्थितिकीय संवेदना भी एक प्रमुख विषय बनकर हमारे सामने आया। समकालीन रचनाकार साहित्य की पारंपरिक परिधि में न रहकर साहित्येतर अनुभूतियों को भी अपने लेखन का विषय बनाना शुरू करते हैं। यह सच भी है कि साहित्य की कोई निश्चित सीमा नहीं है। वह सर्वत्र है। इस संबंध में प्रसिद्ध आलोचक और चिंतक डॉ. रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं, 'साहित्य चूँकि समय और समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा नाम है। अतः जीवन और जगत की कोई भी समस्या/विडंबना उसकी विषय परिधि से बाहर नहीं। दरअसल ब्रह्मांड में जो कुछ भी अस्तित्ववान है, वह मनुष्य की संवेदना, चिंता और चिंतन का विषय है और प्रकारांतर से साहित्य का भी।'[1] इस प्रकार पर्यावरणीय विकृतियों से आहत कवि मन ने पारंपरिक प्रकृति चित्रण से भिन्न प्रकृति के विनाश पर अपनी चिंता जाहिर करते हुए कविताएँ करनी शुरू की। कविता में पारिस्थितिकी चिंतन की धारा में आठवें और नवें दशक आरंभिक चरण में रखे जा सकते हैं। वैसे तो हमारी पूरी ज्ञान परंपरा, साहित्य और संस्कृति प्रकृति के सानिध्य में ही उद्भूत हुई है तथापि प्रकृति के विनाश की चिंता आधुनिक युग में उत्पन्न होने के कारण समकालीन साहित्य में चेतावनी के रुप में उपस्थित है।

मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के समस्त जीव जंतुओं का समग्र परिवेश पारिस्थितिकी से ही विकसित तथा प्रभावित होता रहा है। इतिहास हमें बताता है कि प्रत्येक मानवीय सभ्यता प्रकृति की गोद में ही जन्मी, फली-फूली है और अंततः उसी में समा गई है। सिंधु घाटी की सभ्यता हो अथवा मिस्त्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता, सभी नदियों से प्रारंभ होकर नदियों में विलीन हुईं। इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि सृष्टि के समस्त प्राणियों एवं उनके क्रियाकलापों का नियामक प्रकृति ही रही है। पारिस्थितिकी तथा समाजशास्त्र मानवशास्त्र का अध्ययन करने पर एक निष्कर्ष सामने आता है कि मानव के पारस्परिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों का आधार पर्यावरण ही है अर्थात इन संबंधों को निर्धारित करने में पर्यावरण की केंद्रीय भूमिका होती है। जैव-विविधता, मानव की उत्पत्ति, सभ्यता की निर्मिति, धर्म, जाति, साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति, युद्ध और शांति आदि प्रत्येक क्रियाकलापों का कारण प्रकृति ही रही है।

वर्तमान युग विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। इसके जरिये मनुष्य असंभव को भी संभव बनाने का दंभ भर रहा है। नई-नई तकनीकों से जहाँ एक ओर वह सृजन की अपार क्षमता का स्वामित्व ग्रहण कर रहा है, वहीं तरह-तरह के विनाशकारी अस्त्रों-शस्त्रों के निर्माण से उसने समूची मानव जाति को विनाश के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है। पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। विकास के रोज नए-नए बनते लक्ष्यों तक पहुँचने की जद ने मनुष्य और प्रकृति को भी आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया

है। जिसकी उपलब्धियों पर वह अब तक इतराता रहा है, वही प्रकृति मानों अब मनुष्य से अपना हिसाब माँग रही हो।

साहित्य का दायरा बहुत व्यापक है। अतः समाज और जीवन की कोई भी विडंबना उसके दायरे के बाहर नहीं है। प्रत्येक प्रकार की समस्याओं और विद्रूपताओं पर अपनी दृष्टि पहुँचाना साहित्य का मूल लक्षण रहा है और उसका मूल कर्तव्य भी। नतीजतन साहित्य से इतर माने जाने वाले विषय भी उसका केंद्र बने। इसके लिए साहित्यकार को अपना ज्ञान भी व्यापक करना पड़ा और अनुभव परिधि भी। इस प्रकार साहित्येतर ज्ञान-विज्ञान के विषयों के समावेश से साहित्य व्यापक भी हुआ है और समृद्ध भी।

आधुनिक युग में औद्योगिकरण और लगातार बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के फलस्वरूप मनुष्य प्रकृति के दोहन की तरफ उद्यत हुआ। बढ़ते शहरीकरण, विकास के बदलते पैमाने और आधुनिक विज्ञान की नई-नई खोजों के कारण प्रकृति बड़े पैमाने पर दुष्प्रभावित हुई है। प्रकृति और मनुष्य की इच्छाओं के बीच संतुलन आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। महात्मा गांधी का कहना था कि भोग की बढ़ती प्रवृत्ति ही प्रकृति का दोहन करवाती है। इसलिए हमें इससे बचना चाहिए और जल, जमीन और भोजन जैसी अनिवार्य सुविधाओं के लिए हमें प्रकृति का दोहन नहीं बल्कि उसका उपयोग करना चाहिए। ऐसा करने पर ही यह धरती युगों-युगों तक हमारी आवश्यकताओं को पूरा करती हुई जीवन के विविध रूपों के साथ मुस्कुराती रहेगी। धरती प्रत्येक मनुष्य की जरूरतों को पूरा कर सकती है पर मनुष्य के लालच को पूरा करने के लिए ऐसी हजार धरती भी कम पड़ेगी। समकालीन युग के कवियों ने अपनी-अपनी कविताओं और चिंतन के माध्यम से मानव जाति को चेताने का पूरा प्रयत्न किया है। अपनी लालसा के वशीभूत होकर लगातार प्रकृति से छेड़छाड़ कर रहे मनुष्य को चेतावनी देते हुए कवि गिरिजाकुमार माथुर लिखते हैं,

है महासत्य यह, स्वर्ण, दैत्य,
हमने खोजी हैं, परम सिद्धियाँ जीवन की।
जो हैं आधार सृष्टि तक की,
उनका यह मनमाना प्रयोग,
हैं छेड़छाड़ कर रहा
प्रकृति की नीति, नियम, मयार्दा से
यदि क्षुब्ध, क्रुद्ध हो गई प्रकृति,
वह भस्मीभूत करेगी सारी दुनिया को।[2]

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा जापान पर गिराए गए अणु बमों की विभीषिका से आज कौन अनजान है? इस तरह की वैज्ञानिक खोजों पर आज का कवि सवाल उठाता है जो पूरी मानव जाति के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दे। कवि 'अज्ञेय' ने 'हम जरूर जीतेंगे' कविता में अणु अस्त्रों की भयावहता का चित्रण किया है। उनकी चिंता है कि इन बमों के प्रयोग से एक दिन संपूर्ण पृथ्वी विनष्ट हो जाएगी। कवि लिखता है,

कहाँ-कहाँ

नहीं जमा हैं वे बम,
जिनसे एक क्षण में
मिट जा सकते हैं हम।[3]

वर्तमान में प्रत्येक राष्ट्रों के मध्य बढ़ती दूरियों को देखने पर कवि की इस चिंता को सहज ही समझा जा सकता है।

आज पूरे विश्व के पर्यावरणविद् पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण को लेकर बेहद चिंतित हैं। चिंता स्वाभाविक है। निरंतर असंतुलित होते जा रहे पर्यावरण के परिणाम प्रत्यक्ष रूप से घटित होने लगे हैं। ऐसे में तरह तरह के उपाय विश्व की बौद्धिक बिरादरी के द्वारा किए जा रहे हैं। भौतिकता के अतिरेक ने मानव को अंतमुर्खी बने रहने पर विवश कर दिया है। प्राकृतिक परिवेश से दूर हो कर वह भौतिकता को ही समग्र मान कर बैठा है। के. वनजा के अनुसार, 'आधुनिकता औद्योगिक संस्कृति का सौंदर्यशास्त्र है। वह प्रकृति से मनुष्य का अलगाव है। आधुनिकता में विश्व की सहज अन्विति को मिथ्या कहने का अहंकार है।... आधुनिकता ने साहित्य से जिंदगी की समग्रता को अलग कर दिया। जिंदगी और प्रकृति से साहित्य को अलग करने की इस प्रक्रिया को डिसिंचांटमेंट (Disefchftmeft) कहते हैं।'[4] परिणामस्वरुप वैचारिक रूप से मानव और मानव के कारण प्रकृति प्रदूषित होती गई है। भवानी प्रसाद मिश्र 'वातावरण में रण' नामक कविता में लिखते हैं,

न पानी साफ है,
न कहीं प्रकाश है स्वच्छ
जब सब कुछ मैला है
आसमान, गंदगी बरसाने वाला
अछोर एक थैला है।
कहीं चले जाओ मिलती नहीं है
वायु प्राणपद।[5]

इसी कविता में आगे वह ध्वनि प्रदूषण के कारण प्रकृति पर पड़ रहे दुष्प्रभाव का चित्रण करते हैं। प्रदूषण के कारण व ऋतु और जलवायु में भी परिवर्तन होने लगे हैं। भवानी प्रसाद मिश्र व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि,

ऋतुएँ अगर आती भी यहाँ
तो वे शोर में
अपने गीत
क्या खाकर गातीं
इसलिए अच्छा ही है
कि प्रकृति यहाँ नहीं बची।[6]

अपने भौतिक सुख के लालच में प्रकृति को नष्ट कर रहे मनुष्य से प्रकृति के संग सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता को समझाते हुए कवि लिखता है,

नहीं ऐसा मत करो
प्रकृति का चेहरा बिगाड़ो मत

न उसकी गत करो
नहीं ऐसा मत करो
ये हरे मैदान रहने दो।[7]

कवि नरेश मेहता ने प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उसके संघर्षों से मनुष्य के संघर्ष को जोड़ा है। मनुष्य के संघर्ष में जिजीविषा शक्ति की लगातार कामना करते हुए वह लिखते हैं कि,

नदियों की चिंता कौन करता है / पहाड़ों को भी ठंड लगती होगी।
परंतु क्या किसी ने उन्हें कंबल ओढाया?
इस पृथ्वी को तो बहुत पहले ही धैर्य खो देना चाहिए था।
पर क्या किसी दिन भी / किसी तत्व ने अपना धर्म छोड़ा?[8]

साहित्य कभी भी समाज पर सीधा असर नहीं दिखाता है। वह पाठक अथवा श्रोता के मन-मस्तिष्क में गहरे पैठकर मानव के मलिन मन का परिष्कार करता है। संपूर्ण मानवीय सृष्टि के संचालन में मनुष्य तथा उसकी चेतना ही कार्य करती है। पर यह अस्वाभाविक नहीं कि भौतिक सत्ता का असर भी उसकी चेतना पर पड़े। भौतिकता के प्रभाव में कभी यह चेतना सुसंस्कृत तो कभी दूषित भी हो जाती है। ऐसे में कविता और अन्य साहित्य चेतन और अवचेतन के परिष्करण में सहायक होता है। 'कविता क्या है' निबंध में 'आचार्य शुक्ल' लिखते हैं कि, 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।'[9] शुक्ल जी ने यहाँ जिन अनुभूतियों के संचार की बात की है दरअसल वे अनुभूतियाँ हमारे चेतन मन से होते हुए अवचेतन मन की ओर प्रवाहित होती हैं। मानसशास्त्र की मान्यता है कि हमारे प्रत्यक्ष कार्यकलाप भी इस अवचेतन मन से बहुत हद तक प्रभावित होते हैं। इस तरह कला एवं साहित्य द्वारा प्राप्त अनुभूतियाँ अवचेतन मन के सहारे मनुष्य का मार्गदर्शन करती हैं। डॉ. के. वनजा इस संबंध में लिखती हैं, 'चेतन के समान अचेतन भी मनुष्य की जिंदगी की गति-विगति को नियंत्रित करता है। दर्शनों एवं आशयों के समान या उससे ज्यादा सहज वासनाएँ एवं आदिरूप मनुष्य के मन में असर डालते हैं। कला मनुष्य के अचेतन पर प्रभाव डालती है। यह अचेतन चेतन को प्रज्वलित करता है।'[10] कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने इसी प्रकार अपनी कविताओं से पाठकों के अवचेतन मन को लक्ष्य करते हुए लिखा है,

जंगल की याद / अब उन कुल्हाड़ियों की याद रह गई है, / जो मुझ पर चली थीं।
उन आरों की जिन्होंने / मेरे टुकड़े-टुकड़े किए थे / मेरी संपूर्णता मुझसे छीन ली थी।[11]

अपनी आवाज में कवि ने जिस प्रकार जंगल की वेदना को व्यक्त किया है वह

सहृदय पाठक के मन में न जा बसे, ऐसा संभव ही नहीं है।

बीसवीं सदी में बढ़ते वैज्ञानिक आविष्कारों, औद्योगीकरण और बढ़ते यातायात के साधनों के कारण अनेक प्रकार के प्रदूषण की समस्याएँ बढ़ने लगीं। सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते इन समस्याओं ने विकराल रूप धारण कर लिया। मनुष्य इन समस्याओं पर सोचने के लिए विवश हो गया। घर-बाहर हर जगह प्रदूषण। अपने सामान्य जीवन से उदाहरण लेकर कवयित्री स्नेहमयी चौधरी तहखानों में काम करने वाले मजदूरों के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए लिखती हैं–

बहुत देर तहखाने में रहने पर /
फेफड़ों पर दबाव पड़ता है,
और दम घुटने लगता है। /
कैसे कोई हर वक़्त तहखाने के अंदर रह सकता है?[12]

प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि केदारनाथ अग्रवाल ने पर्यावरण के प्रति भी अपने कवि-कर्म का जिम्मेदारी से निर्वाह किया है। बदलते मानव स्वभाव के कारण मनुष्य और पर्यावरण दोनों के अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है। पर्यावरणीय ह्रास के कारण कवि को वृक्ष भी निर्धन, दरिद्र, असमर्थ और बेजान लग रहे हैं। वह लिखते हैं–

हे मेरी तुम/ ठठरियाएँ खड़े हैं बिना पत्तियों के/ परार्थी पेड़
निर्धन, दरिद्र/ असमर्थ और बेजान/
हम आदमियों के आदिम वनस्पतीय अग्रज।[13]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र का क्षरण हिंदी साहित्य में बड़ी प्रमुखता से चित्रित हुआ है। मनुष्य के असीमित लोभ के कारण धरती की जो दुर्दशा हो रही है उसके चित्रण के साथ-साथ उसके प्रतिरोध में भी कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है। समकालीन कवि को न केवल आशा है अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि उसकी जन्मदात्री पृथ्वी बची रहेगी। कवि केदारनाथ सिंह की 'पृथ्वी रहेगी' की ये पंक्तियाँ द्दष्टव्य हैं-

मुझे विश्वास है / यह पृथ्वी / यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में / यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में रहते हैं दीमक / जैसे दाने में रह लेता है घुन यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अंदर / यदि और कहीं नहीं तो मेरी जबान और मेरी नश्वरता में यह रहेगी / और एक सुबह में उठूँगा, मैं उठूँगा पृथ्वी समेत / जल और कच्छप समेत मैं उठूँगा, मैं उठूँगा और चल दूँगा उससे मिलने / जिससे वादा है कि मिलूंगा।[14]

संदर्भ :

1. प्रतिमान, समकालीन हिंदी उपन्यास और पारिस्थितिकीय संकट, रोहिणी अग्रवाल, वाणी प्रकाशन, जन-जून 2013, पृ० 205, 2 कल्पांतर, गिरिजा कुमार माथुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983, पृ० 61, 3 ऐसा कोई घर आपने देखा है, अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986, पृ० 29, 4 साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० 11 5 नीली रेखा तक, भवानी प्रसाद मिश्र, पीताम्बर पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984, पृ० 28,

6 वही, पृ० 99, 7 वही, पृ० 139, 8 अरण्या, नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ० 22, 9 चिंतामणि-1, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007, पृ० 107, 10 साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० 11, 11 क्या कहकर पुकारूँ, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984, पृ० 102, 12 चौतरफा लड़ाई, स्नेहमयी चौधरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986, पृ० 10, 13 हे मेरी तुम, केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ०60, 14 यहाँ से देखो, केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ० 25

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय